सामयिक प्रकाशन
समाज और इतिहास
नवीन शृंखला -15

कुछ अफ़गान कबीलों की नस्लों की उत्पत्ति का आलोचनात्मक अध्ययन : राजस्थानी स्रोतों के आधार पर

जी0 एस0 एल0 देवड़ा
पूर्व कुलपति
कोटा खुला विश्वविद्यालय
कोटा, राजस्थान

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
2018

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

© जी0 एस0 एल0 देवड़ा, 2018
सर्वाधिकार सुरक्षित। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी अंश का दोबारा प्रयोग, पुनरोत्पादन किसी भी रुप में नहीं किया जा सकता। इसमें व्यक्त विचार, अर्थनिर्धारण तथा निष्कर्ष पूर्णतः लेखक के हैं और किसी भी तरह, पूर्णरुपेण अथवा अंशतः, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के विचारों को नहीं दर्शाते।

प्रकाशक

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
तीन मूर्ति भवन
नई दिल्ली–110011
ई.मेल : director.nmml@gov.in

आईएसबीएन : 987-93-84793-13-5

पृष्ठ सज्जा : ए.डी. प्रिंट स्टूडिओ, 1749 बी/6, गोविन्द पुरी, एक्सटेंशन कालकाजी, नई दिल्ली–110019. ई.मेल : studio.adprint@gmail.com

कुछ अफ़गान कबीलों की नस्लों की उत्पत्ति का आलोचनात्मक अध्ययन : राजस्थानी स्रोतों के आधार पर*

जी0 एस0 एल0 देवड़ा

अफ़गानिस्तान के निवासियों की उत्पत्ति के प्रश्न को लेकर इतिहासकार व मानवशास्त्री अलग–अलग धारणाएं प्रस्तुत करते हैं। इस विषय पर चर्चित स्थानीय मान्यताएं भी एक वृहत् ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जानकारी देती हैं परन्तु उनसे एक निश्चित कालक्रम का बोध नहीं होता और प्रजातीय पहचान भी पुरानी है या नयी, का निर्धारण नहीं होता है। फिर, स्थानीय मान्यताओं व आधुनिक शोध कार्यों के प्रस्तावों के बीच में बहुत कम मेल है। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी–पश्चिमी सीमान्त संभाग में जिस भूभाग को आज अफ़गानिस्तान कहा जाता है, उसका यह नामकरण 11वीं व 12वीं शताब्दी के अन्त तक नहीं हुआ था। मिनहाज़ जैसा लेखक जो घोर व गज़नी के सुलतान मोहम्मद गौरी का समकालीन था, अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ तबकाते नासिरी में सिर्फ एक–दो स्थलों पर 'अफ़गान' शब्द का उल्लेख करता है (मिनहाज,1970, पृ0 304 टिप्पणी 3)। इस बात पर भी विवाद है कि अफ़गानिस्तान एक भौगोलिक अथवा नस्लीय पहचान है। अफ़गानिस्तान में हजारा समुदाय के लोग जो कि पख्तूनों के बाद सबसे अधिक संख्या में बसते हैं अभी भी स्वयं को अफ़गान न कहकर मंगोल वंशी कहलाना पसन्द करते हैं। मंगोल, चंगेज़खाँ के काल से अफ़गानिस्तान के क्षेत्र में आकर बस गये थे। यह अलग बात है कि कुछ हजारा समुदाय के लेखकों ने इस मत को चुनौती देते हुए स्वयं को क्षेत्र का पुराना स्थानीय निवासी बतलाया है। अर्थात वे इस क्षेत्र की पुरानी नस्लों जैसे, सीथियन, कुषाण या हूण में से कोई भी हो सकते हैं। अधिकतर यूरोपीय लेखक उन्हें यूनानी या इज़रायली भी बतलाते हैं। प्राचीन काल में बैक्ट्रीया, और उसके आसपास के क्षेत्र में, यूनानी बस्तियाँ हुआ करती थीं व पूर्व मध्यकाल में भी कई ऐसे ऐतिहासिक उद्धरण आये हैं जिनसे विदित होता है कि इस क्षेत्र में यहूदियों के घर थे। पुरातात्विक उत्खनन् में भी यहूदी कब्रिस्तान के प्रमाण मिले हैं। एक यहूदी व्यापारी ने घोर क्षेत्र के क़बीले के

*22 सितम्बर, 2014 को नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली में दिए गए व्याख्यान का संशोधित संस्करण।

सरदारों को खलीफ़ा हारुन रशीद (786–809 ई0) से मिलवाया था। अफ़गान स्वयं का सम्बन्ध अरबों से बतलाते हैं। कुछ क़बीले तुर्क वंशज होने का दावा प्रस्तुत करते हैं। अफ़गानिस्तान के पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र में ईरानी मूल के कबीलों की भरमार रही है। मध्यकाल में वे सब क़बीले जो गैर तुर्क या गैर अरब नस्ल के थे, सामूहिक रूप से 'ताजीक' के सम्बोधन से पहचाने गये (मिनहाज, 1970, पृ0 319, 337, 408; होलदिच, 1881, पृ0 75–76; बेकन एलिजाबेथ, 1951, पृ0 230–47; टेन्नर स्टेफन, 2002, पृ0 77–79; गाफुरॉव बी0 जी0, 2005, पृ0 316–17 खानम आर, 2005, पृ0 142–43)।

अफ़गानिस्तान का मध्य व उत्तरी सघन पहाड़ियों का भौगोलिक भाग जिसके मध्य हरीरुद नदी बहती है और जो उत्तर से दक्षिण की दिशा में बहने वाली अनेक क्षेत्रीय नदियों का उद्गम स्थल है, कभी खुरासान का अभिन्न अंग समझा जाता था। वहाँ आज भी विभिन्न नस्लों के कबीलों का निवास है, जिनका इतिहास स्पष्ट नहीं है। उनमें प्रमुख रूप से हजारा, तातार, कक्कड़, वजीरी, गिलजाई और दुमर्स बसते हैं, जो दरी फ़ारसी अथवा पश्तो बोलते हैं। मध्य क्षेत्र के उत्तरी भाग में हरीरुद के दोनों किनारों पर बसने वाले क़बीलों का संयुक्त नाम 'चाहर एमक' है। वैसे इस संयुक्त नाम के अन्दर लगभग 250 स्वतन्त्र कबीले हैं लेकिन उनमें मुख्य रूप से चार कबीले अपनी अधिक जनसंख्या व प्रभाव को लेकर अधिक चर्चित हैं। मूलतः घोर प्रदेश में रहने वाले ये चार कबीले हैं–जामशीदी, ताइमानी, तिमूरी और फिरोजकुही। जामशीदी अपनी उत्पत्ति ईरान के एक प्रसिद्ध शासक जमशेद से मानते हैं। तिमूरी कबीले की उत्पत्ति के बारे में कोई जानकारी नहीं है। ताइमानी स्वयं को अपने एक प्रसिद्ध सरदार ताइमान से जोड़ते हैं जिसने 1650 ई0 में कक्कड़ पश्तों के साथ सन्धि करके अपने कबीले को एक नयी पहचान दिलवायी थी। फिरोजकुही अपने आपको उस प्रसिद्ध स्थान 'फिरोजकोह' से जुड़ा मानते हैं जो कभी घोर शासकों की राजधानी हुआ करती थी। वे भी हजारा की भांति इस बात पर विश्वास करते हैं कि उनकी उत्पत्ति भी मंगोल अथवा तातारकुल से हुई है। प्रतीत होता है कि अफ़गानिस्तान में मंगोल अथवा तातार कुल से जुड़ने की परम्पराएं मंगोल शक्ति के उत्थान के पश्चात् ही प्रारम्भ हुई होंगी (होलदिच, 1881, पृ0 75–76; बेकन एलिजाबेथ, 1951, पृ 10 230–47; खानम आर, 2005, पृ0 142–43)।

चाहर एमक क़बीले उसी क्षेत्र में निवास करते हैं जहाँ 12वीं व 13वीं शताब्दी में घोर शासकों का राज्य स्थापित था। घोर शासक शंसबानी कुल के थे।

समकालीन इतिहासकार मिनहाज बतलाता है कि घोर प्रदेश का मध्य भाग जहाँ आसुक पर्वत स्थित है, तिरमान भी कहलाता है। वे शंसबानी जो इस क्षेत्र में बसे हुए हैं वे तिरमानी भी कहलाये। संभवतः यह तिरमान ही समय के साथ ताइमान हो गया हो। गिलजाई कबीले की परम्पराएं भी यह इंगित करती हैं कि वे भी शंसबानी कुल से जुड़े हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि घोर प्रदेश में शंसबानी कुल के अनेक कबीले अलग–अलग नाम से रहते हैं। नये शोध कार्य से जानकारी मिली है कि 14 वीं शताब्दी में हेरात का कुर्त साम्राज्य का राजवंश भी मूलतः शंसबानियों से जुड़ा हुआ था। 18वीं व 19वीं शताब्दी के विदेशी यात्रियों ने इस बात को पहचाना कि चाहर एमक अफ़गानिस्तान के अन्य कबीलों के लोगों से शक्ल–सूरत तथा सामाजिक व्यवहार व परम्पराओं में भिन्न हैं। मिनहाज बतलाता है कि शंसबानी शासकों में उत्तराधिकार को लेकर यह परम्परा थी कि गद्दी पर बैठने वाले राजकुमार की माता भी शंसबानी परिवार से होनी चाहिये। तुर्क शासकीय कुल की परम्पराओं की दृष्टि से प्रतिष्ठित लोग थे लेकिन शंसबानी राजपरिवार में तुर्क पत्नी से पैदा हुआ पुत्र राजगद्दी व सम्पति में उत्तराधिकार के लिये अयोग्य समझा जाता था। राजकीय परिवारों में 13वीं शताब्दी के पश्चात् यह परम्परा कमजोर पड़ गयी। वैसे सभी 'चाहर एमक' इस्लाम के अनुयायी हैं और उनमें अधिकतर सुन्नी सम्प्रदाय के हैं। आजकल वे ताजीक पहचान में सम्मिलित किये जाते हैं (मिनहाज, 1970, पृ0 319, 337, 408; होलदिच, 1881, पृ0 75–76, 88, 142–43; याती, 1888, पृ0 9, 220–24;देवड़ा, जी0 एस0 एल0, 2011, कुष्क)।

गज़नवी व घोर शासनकाल के इतिहासकारों ने उल्लेखित किया है कि पूर्व मध्यकाल में घोर प्रदेश व उसके उत्तरी सीमान्त क्षेत्र गर्जिस्तान में शंसबानी, शीसानी व शर जाति के कबीले निवास किया करते थे (मिनहाज, 1970, पृ0 14, 363)। संभवतः शंसबानी व शीसानी मूलतः एक ही कुल के दो अलग–अलग क़बीले बन गये थे। इन तीनों कबीलों में परस्पर सघन प्रतिद्वन्द्विता थी। खलीफ़ा हारुन रशीद के दरबार में शंसबानी व शीसानी के मध्य एक समझौता हो गया था जिसके अनुसार शीसानीयों ने शंसबानियों की राजनैतिक सर्वोच्चता स्वीकार कर ली थी (मिनहाज, 1970, पृ0 312)। गर्जिस्तान के 'शर' बुखारा के समानीयों के हाथों परास्त होकर अपना गौरव खो बैठे थे और धीरे–धीरे अपने अस्तित्व के लिये शंसबानियों पर आश्रित हो गये (निज़ामी, 1996, पृ0 178–79)। 12वीं शताब्दी में उनका क्षेत्र शंसबानियों

अर्थात घोर राज्य में मिला लिया गया। गजनी के सुलतान महमूद व उसके पुत्र मसूद के बाद घोर के शंसबानियों की उभरती शक्ति को रोकने वाली अफ़गानिस्तान, ईरान व मध्य एशिया में कोई शक्ति नहीं बची थी। 13 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दो भाइयों गयासुद्दीन व मुइज़ुद्दीन मोहम्मद गौरी के शासनकाल में घोर साम्राज्य मध्य एशिया से लेकर भारत में बंगाल की खाड़ी तक फैल गया था। 1206 ई0 में मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद उसके विशाल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। बहुत से शंसबानी मध्य एशिया व भारतीय सीमान्त क्षेत्र में परिगमन कर गये। मध्य एशिया में उन्होंने स्वयं को ताजीक या तुर्क पहचान में समा दिया (निज़ामी, 1996, पृ0 178–79)।

मिनहाज जो कि स्वयं भी शंसबानियों से सामाजिक तौर पर जुड़ा हुआ था, और संभवतः पहला इतिहासकार है जो विश्वास के साथ उन्हें ताजीक कहता है। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह शंसबानियों के लिये 'ताजीक' पहचान को प्रतिपादित करना चाहता है। यह वह दौर है जब मध्य एशिया, इराक, ईरान व अफ़गानिस्तान के क्षेत्रों में अलग से गैर तुर्क व गैर अरब लोगों को ताजीक कहने की परम्परा दृढ़ हो रही थी (बारथोल्ड वी0 वी0, 1962, पृ0 15; निज़ामी, 1996, पृ0 178–79; गाफुरॉव बी0 जी0, 2005, पृ0 316–17)। गज़नवी काल के इतिहासकारों ने शंसबानियों को गैर–इस्लामी लोग माना है। बैहाकी व जहाँआरा ने उन्हें हिन्दू कहा है (मिनहाज, 1970, पृ0 321–322 टिप्पणी 7)। उसी प्रकार महमूद गजनी काल के इतिहासकार उतबा ने 10 वीं शताब्दी के शंसबानियों के प्रसिद्ध शासक अमीर सूरी को भी हिन्दू कहा है (निजामी, 1996, पृ0 322 टिप्पणी 7)। आधुनिक इतिहासकारों की धारणा है कि शंसबानी व शर दोनों कुषाण, सीथियन या शक, पार्थियन या हूण में से कोई भी हो सकते हैं (टेन्नर स्टैफर, 2002, पृ0 77)। कन्निघम के अनुसार उस समय काबुल व जाबुल (सीस्तान) के अलावा अफ़गानिस्तान के पूर्वी क्षेत्रों में इण्डो–सीथियन व इण्डियन बसते थे (कन्निघम अलेक्जेण्डर, 1924, पृ0 22–24, 28–29, 44.45)। फ्रयेई, सायील्ल व मारक्वार्ट ने दावा किया है कि 10वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक पूरा अफ़गानिस्तान भारतीय प्रभाव क्षेत्र में था (जे0 मारक्वार्ट 1901; 205–06; फ्राये आर0 एन0 एवं ए0 एम0 सायली, 1943, पृ0 144–45, 205–06)। समकालीन लेखक अल इस्तखरी ने माना है कि 10 वीं शताब्दी तक घोर प्रदेश धर्म (इस्लाम) विरोधी लोगों के नियन्त्रण में था (स्ट्रैन्ज जी0 ले, 1905, पृ0 416)। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अरबों के

सीस्तान पर किये गए आक्रमण का विरोध रतिपाल नाम के भारतीय राजा ने किया था। काबुल पर हिन्दूशाहियों का अधिकार भारतीय इतिहास का एक चर्चित अध्याय है (बोसवर्थ, सी0 ई0, 1963, पृ0 35–36)। समानी साम्राज्य के तुर्क सरदार अल्पतेगिन व महमूद के पिता सुबुकतेगिन का गजनी में सामना करने वाला स्थानीय सरदार लईक बोसवर्थ के कथनानुसार मुसलमान न होकर हिन्दू था। (बोसवर्थ, सी0 ई0, 1963, पृ0 35–36; नाज़िम मुहम्मद 1971, पृ0 25) महमूद गजनी की सेना में अनेक हिन्दू सरदार थे जिन्होंने सुलतान के मध्य एशिया व ईरान के आक्रमणों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। बयाना व करौली का शासक विजयपाल, सुलतान महमूद व उसके पुत्र मसूद दोनों की सेवा में था। विजयपाल मसूद से नाराज होकर बयाना चला आया था (देवड़ा जी0 एस0 एल0, 2012, कांग्रेस)। गजनी के सुलतान महमूद व मसूद ने जब घोर प्रदेश पर आक्रमण किया था उसे धर्म विरोधियों के विरुद्ध अभियान कहा। मसूद ने अपने अभियान में जिस प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी शंसबानी मलिक से सामना किया, उसका नाम 'वारमेसबट' था। 8वीं शताब्दी के पड़ौसी प्रदेश सिन्ध के इतिहास 'चचनामा' में 'बट' व 'बेट' शब्द का उल्लेख अनेक बार सैनिक व सेना के मुखियाओं, बल्कि शासकों के लिये उनकी जाति व कुल को बताने के संदर्भ में आया है। इतिहासकारों ने 'बट' व 'बेट' शब्द का अर्थ 'भाटी' या 'भट्टी' कुल से लगाया है। यह 'वारमेस' वीरमसी अर्थात वीरमसिंह लगता है। 'वारमेस' का नाम मिनहाज द्वारा प्रस्तुत शंसबानियों की वंशावली में कई बार आया है। रेवर्ट्री ने 'वारमेस बट' को पंजाब का भाटी जाट माना है (मिनहाज (रेवर्ट्री), 1970, पृ0 321, टिप्पणी 7; मिर्जा कलिचबेग फ्रेदुनबर्ग, 1979, पृ0 100, 105, 108)।

समकालीन इतिहासकारों ने शंसबानियों की जो वंशावली प्रस्तुत की है उसके अनुसार उनका प्रथम पुरुष जुहुक या जोहाक था। उसे काबुल व सिन्ध प्रान्त का शासक बतलाया गया है। फारस के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता होने के कारण उसके वंशजों को घोर प्रदेश में शरण लेनी पड़ी। उस वंशावली में अमीर बनजी जो खलीफ़ा हारुन रशीद से मिला था, से पहले स्पष्टता नहीं है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उस सूची में 'वारमेस' का नाम कई बार आया है। सुलतान महमूद गजनवी ने 1015 ई0 में घोर पर आक्रमण करके तत्कालीन मलिक मोहम्मद सूरी, जो अमीर सूरी का पुत्र था, को उसके पुत्र शिस के साथ कैद कर लिया। उतबा फिर पिता व पुत्र, मोहम्मद सूरी व शिस को हिन्दू कहता है। शिस भागकर मुलतान (हिन्द) चला आया था और वहाँ के

प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर में शरण ली थी। उसके पुत्र साम ने इस्लाम स्वीकार कर लिया और उसका पुत्र हुसैन गजनी लौट आया था। घोर प्रदेश की 11वीं शताब्दी तक कि इमारतों में भारतीय स्थापत्य का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। वस्तुतः हुसैन या इज्जअलद्दीन पहला मलिक था। जिसने घोर प्रदेश में इस्लाम को प्रभावशाली ढंग से प्रचारित किया। उसके पौत्र गयासुद्दीन व मुइजुद्दीन मोहम्मद गौरी के काल में सुन्नी मत का खूब प्रचार हुआ। लेकिन उसके बाद भी स्थानीय निवासी एक लम्बे समय तक अपने समाज एवं पुरानी परम्पराओं को अपनाते रहे तथा उनके नामों को धारण करने में भी विशेष परिवर्तन नहीं आया। कुछ इतिहासकार इस प्रचलन को आधे–अधूरे इस्लाम की उपमा देते हैं (मिनहाज, 1970, पृ0 304–09, 321, टिप्पणी 7; निजामी, 1996, पृ0 178–79)।

सीमान्त क्षेत्र के इन राजवंशों की उत्पत्ति के बारे में अभी तक के चर्चित समकालीन स्त्रोत मौन हैं। वैसे जो कुछ भी विवरण अभी तक सामने आया है वह समानी, सफदवी व गज़नवी शासकों के सीस्तान, गजनी, काबुल–जाबुल पर आक्रमणों के संदर्भ में आया है, अतः वह स्थानीय राजवंशों के बारे में पर्याप्त सूचनाएं नहीं देता। स्थूल रूप से उनका यह विवरण आक्रमणकारियों के साहसिक कारनामों का लेखा–जोखा है जो पराजित पक्षों की वांछनीय सूचनाओं को देने के प्रति सचेत नहीं है। इस कारण पूर्व मध्यकाल में सीमान्त क्षेत्र के राजवंशों के बारें में अभी तक स्थिति स्पष्ट नहीं हो पायी है। सातवीं शताब्दी में भारत गये चीनी यात्री यह बतलाते हैं कि उनके भारत में प्रवेश के समय सीमान्त क्षेत्र काबुल व जाबुल पर क्षत्रिय शासकों का शासन था जिनके मध्य एशिया के तुर्क शासकों के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। काबुल व जाबुल पर एक ही परिवार के दो व्यक्तियों का शासन था (वाटरस् थॉमस, 2004, पृ0 74, 123,)। स्थानीय कहावतों जिन्हें अफ़गानिस्तान में गये पूर्व ब्रिटिश यात्रियों ने उद्धृत किया है, के अनुसार, लगभग उस समय वज या बज नाम का शासक काबुल में शाासन कर रहा था (साइकस् सर पर्सी, 1940, पृ0 152)। अलबेरुनी अवश्य यह जानकारी देता है कि 9वीं व 10वीं शताब्दी के काबुल में जो वरहा राजवंश शासन कर रहा था उनकी वंशावली नगरकोट (हिमाचल प्रदेश) के पहाड़ी दुर्ग में सुरक्षित है (सचाउ एडवर्ड सी, 1989, खण्ड 2, पृ0 11)। यद्यपि अलबेरुनी स्वयं वह वंशावली नहीं देख पाया था। लेकिन उसके इस संदर्भ से यह बात अवश्य उजागर होती है कि इन सीमान्त राज्यों के शासकों की वंशावलियाँ भी कहीं अंकित होती थीं। यह तथ्य हम उस काल के

भारतीय शिलालेखों जिनमें शासकीय कुल की वंशावलियाँ अंकित होती हैं, से भी जान सकते हैं। राजस्थान में 8वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य तक के अनेक शिलालेखों में वंशावलियों की वांछनीय जानकारी उपलब्ध होती हैं। चित्तौड़ के मानमोरी (713 ई0), चाटसू के गुहिल (813 ई0) तथा मंडोर के बाउक (837 ई0) शिलालेखों में क्रमशः मौर्य, गुहिल तथा गुर्जर–प्रतिहार वंशों के राजपरिवारों की एक क्रमबद्ध वंशावली दी गयी है (शर्मा गोपीनाथ 2008, पृ0 54–57)। इतिहासकारों ने सीमान्त क्षेत्रों से मिले शिलालेखों से सूचनाएं एकत्रित करके अन्य स्त्रोतों के सहयोग से काबुल के हिन्दूशाहियों की वंशावली भी तैयार की है (पांडे डी0 बी0, 1973, पृ0 163–67)।

सातवीं शताब्दी के मध्य से ही अरबों के सीस्तान, काबुल तथा सीमान्त क्षेत्रों पर आक्रमण होने प्रारम्भ हो गये थे। 652 ई0 के लगभग अरब सेनापति अब्दुर्र रहमान द्वारा सीस्तान पर किये आक्रमण का सामना रतिपाल नाम के किसी स्थानीय शासक ने किया था। संभवतः उसका सही नाम रीणसी या रणसिंह होगा (पांडे डी0 बी0, 1973, पृ0 73–74)। 'चचनामा' के अनुसार सिन्ध पर अरबों के आक्रमण के समय सिन्धु नदी के दोनों दिशाओं के प्रदेशों में भाटी, चन्ना व सामा लड़ाकू जातियाँ निवास करती थीं, जो राजा दाहिर व अरब सेनापति कासिम दोनों के पक्ष में लड़ी थीं। इन लड़ाकू दलों के मुखियाओं को 'ठाकुर' के नाम से सम्बोधित किया है लेकिन उन सैनिकों को 'राजपूत' नहीं कहा है (मिर्जा कलिचबेग फ्रेदुनबर्ग, 1979, पृ0 94, 100, 126)। उस समय हिन्द व उत्तरी सिन्ध सीमा के क्षेत्र में सतलज व हाकड़ा की घाटियों में भाटियों का एक स्वतन्त्र राज्य 'रामेल' भी अवस्थित था जिसे सिन्ध के राजा दाहिर ने अपने सीरियाई कमाण्डर अलफी के बल पर परास्त किया था। यह विडम्बना है कि मोहम्मद कासिम ने भी सीरियाई टुकड़ियों के बल पर सिन्ध को विजित किया था (मिर्जा कलिचबेग फ्रेदुनबर्ग, 1979, पृ0 56–57, 74, 150–51)। आगे चलकर हम देखते हैं कि गजनी के सुलतान महमूद व उसके उत्तराधिकारियों की सेना में भी अनेक हिन्दू कमाण्डर थे जिन्होंने सुलतान महमूद व मसूद के मध्य एशिया के अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न की थी। बयाना में जादव वंश की स्थापना करने वाला विजयपाल सुलतान महमूद की सेवा में था जो सुल्तान मसूद के काल में नाराज होकर बयाना आ गया था। भटनेर के भाटी शासक विजयराव ने कुछ समय मुलतान में गजनी के शासकों की सेवा की। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय भारतीयों के अलावा भी सीमान्त तथा उत्तरी–पश्चिमी भारत के निवासी काबुल व गजनी

के शासकों को अपनी सैनिक सेवाएं देते रहे हैं। अफ़गानिस्तान में भारतीय सैनिकों की उपस्थिति प्रभावशाली थी (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 40; देवड़ा, जी0 एस0 एल0, 2012, कांग्रेस)।

उत्तर भारत के मैदानों में तुर्क सत्ता के स्थापित होने की घटना एवं उसी समय मध्य एशिया में हुए सैनिक व राजनैतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप अप्रत्याशित रूप से एक यह परिणाम सामने आया कि काबुल और जाबुल के अगले 200 से 300 वर्षों तक शेष भारत के साथ राजनैतिक व सामाजिक सम्बन्ध कमजोर पड़ने लगे। अफ़गानिस्तान व भारत पर मंगोलों के आक्रमणों ने इस अस्थिरता व विश्रंखलता को और आगे बढ़ाया। भारत व अफ़गानिस्तान की पारस्परिक सीमाएं पंजाब के मैदानों में सिन्धु व सतलज के बीच घूमने लगी। इस अवधि में जहाँ काबुल, जाबुल–सीस्तान व खुरासान के समाजों व कबीलों में तुर्क–ताजीकीकरण की प्रक्रिया सघन हुई, वहीं उत्तरी–पश्चिमी भारत में राजपूतीकरण की प्रक्रिया घर कर गयी। इस प्रक्रिया में भारत के सीमान्त क्षेत्र के विभिन्न भागों में निवास करने वाले एक ही कबीला या कुल के लोग अलग–अलग राजनैतिक सीमाओं में बंटकर एक नयी नस्लीय पहचान के अंग बन गये। अर्थात कहीं वे ताजीक तो कहीं वे राजपूत कहलाने लगे। राजस्थानी ऐतिहासिक स्त्रोतों के आधार पर हुए नये शोध अध्ययनों से विदित होता है कि यह नस्लीय ध्रुवीकरण एकाकी नहीं था। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, कबीले व सामाजिक समूह न केवल राजपूत समाज की इकाई के रूप में उभरे बल्कि व्यवसाय के आधार पर अन्य सामाजिक या जातीय इकाइयों में भी गठित हो गये। बल्कि इसी प्रक्रिया ने आगे चलकर लोगों को राजपूत समाज से भी खण्डित होकर अन्य समाजों में समा जाने की प्रवृति को भी एक लम्बे समय तक प्रोत्साहन दिया। जादम व भाटी इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण पढ़ने को मिलते हैं। इस प्रकार के लेखन को कई बार 'जात' व 'अनजात' प्रक्रिया के नाम से सम्बोधित किया गया है। अर्थात राजपूतीकरण को जात तथा राजपूत समाज से अन्य जातियों में जाने की प्रक्रिया को 'अनजात' करना या होना कहा गया है (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 36–37; देवड़ा जी0 एस0 एल0, 2012, पृ0 18–20)। अफ़गानिस्तान, ईरान व मध्य एशिया में इस्लाम के तेज़ी से बढ़ते प्रभाव ने धार्मिक स्तर पर धुव्रीकरण को प्रोत्साहित किया लेकिन सामाजिक स्तर पर जातीय व्यवस्था को नहीं पनपाया। भारत में कबीलों या कुलीय परिवारों का जातीय व्यवस्था के अन्तर्गत समायोजन पूर्व मध्यकाल की एक युगान्तकारी

घटना है। सैनिक, राजनैतिक व आर्थिक बल्कि वातावरणीय कारणों से हुए इस प्रकृति के सामाजिक विभाजन तदुपरान्त नये ढंग से उनके समायोजन के बारे में मध्यकाल के चर्चित ऐतिहासिक स्त्रोत मौन हैं। जहाँ तक लोगों में शासकीय वर्ग की नस्लीय पहचान का प्रश्न है वे अधिकतर पौराणिक अथवा प्राचीन काल के योद्धाओं के वंश से जोड़ते हुए प्रस्तुत की गयी हैं। इसी उधेड़बुन में एक ओर जहाँ स्थानीय स्तर पर राजपूत राजवंश तो वहीं दूसरी ओर सल्तनत काल के शंसबानी, खिलजी व तुगलुक वंश की नस्लीय पहचान को लेकर अनेक मत–मतान्तर विचारधाराएं खड़ी हो गयी हैं। आधुनिक काल में इस प्रकार के सामाजिक आवागमन–निष्क्रमण तथा उनके स्थानीय स्तर पर समा जाने को लेकर एक नयी व्याख्या सामने आयी है। वो कबीले या जातियाँ जो सीमान्त क्षेत्र व अफ़गानिस्तान के विभिन्न भागों में बसती थीं तथा समय के साथ सैनिक या प्राकृतिक कारणों से कभी इस तरफ तो कभी उस तरफ बस जाती थीं, को अन्ततः भारत में निवास करने पर उनको विदेश जनित उत्पत्ति की श्रेणी में रख दिया गया है (शर्मा गोपीनाथ, 1973, पृ0 31–33)।

राजस्थान व पश्चिमी भारत के अनेक राजघराने जो मध्यकाल में एक शक्ति के रूप में चर्चित रहे एवम् 1951 तक अस्तित्व में बने रहे, इन सीमान्त जातियों से जुड़े प्रतीत होते हैं। इनमें से कुछ तो मध्यकाल की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही अस्तित्व में आ गये उनमें मेवाड़, करौली (बयाना) व जैसलमेर मुख्य हैं। लेकिन उनके सीमान्त प्रदेशों से जुड़ाव के बारे में कोई निश्चित मत नहीं प्रतिपादित हो सका। मेवाड़ का आरम्भिक इतिहास स्पष्ट नहीं है तथा उपलब्ध सूचनाओं को लेकर आधुनिक इतिहासकारों ने उसे बहुत विवादपूर्ण बना दिया है। यद्यपि अबुल फ़जल ने 16वीं शताब्दी में ही लिख दिया था कि मेवाड़ का राजपरिवार स्वयं को ईरान के प्रसिद्ध शासक नौशेरवाँ के साथ जोड़ने की बात करता है (अल्लामी अबुल फजल, 1989, पृ0 273)। जेम्स टॉड भी अबुल फजल के कथन के संदर्भ में राजपरिवार को पार्थियन या प्रशियन प्रवासी मानता है। टॉड अपने कथन को उस मत के अन्तर्गत सत्यापित करता है जिसमें वह पश्चिमी भारत की अधिकांश शासकीय जातियों को उत्तर–पश्चिम सीमा से आये आक्रमणकारियों का वंशज बतलाता है। उनमें शक, पार्थियन, कुषाण–मुण्डा व हूण प्रमुख हैं (टॉड जेम्स, 1920, भाग प्रथम, पृ0 271–80)। टॉड की यह मान्यता एक निश्चित अवधारणा को तो व्यक्त करती है लेकिन वह भी उसे भारत की उस

भौगोलिक राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में प्रतिपादित करता है जो औपनिवेशिक काल के प्रारम्भ से पनपनी प्रारम्भ हो गयी थी। परिणामस्वरूप राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत को ही बल मिला। जिसमें उन भारतीयों की नस्लीय पहचान को संदेहास्पद बना दिया जो प्राचीन काल से सीमान्त क्षेत्र या उससे आगे तक बसी हुई थीं अथवा वे प्रजातियाँ जो एशिया के दूसरे भागों से ई0 पूर्व दूसरी व तीसरी शताब्दी में इन क्षेत्रों में आकर बस गयी थीं। जैसलमेर राज्य की ख्यात (जैसलमेर री ख्यात) में लिखित भाटी राजवंश की वंशावली तथा विशेष नामों के साथ उल्लेखित संक्षिप्त टिप्पाणीयाँ से ज्ञात होता है कि उनका राजवंश पश्चिमी पंजाब व सीमान्त क्षेत्र से पलायन करके राजस्थान में आया था। वे सीमान्त क्षेत्र में भाटी कहलाने से पूर्व जादम कहलाते थे। उनका अफ़गानिस्तान में गजनी व जाबुल पर एक लम्बे समय तक शासन रहा था। ख्यात में दी गयी टिप्पणी के अनुसार उन्होंने गजनी पर खुरासान के आक्रमण के विरुद्ध पराजय से पूर्व 'शाका' सम्पन्न किया था (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 28–30)। खुरासान का यह आक्रमण वस्तुतः हूणों का आक्रमण था जो संभवतः चौथी शताब्दी के अन्त में हुआ था। जादमों के कुछ कबीले उसके पश्चात् सिन्ध व उत्तरी राजस्थान में आ गये। राजस्थान में उन्होंने घग्गर नदी के किनारे पाँचवी शताब्दी के मध्य में कभी भटनेर का किला स्थापित किया। सीमान्त क्षेत्र से उनके राज परिवार का अन्तिम पलायन राजस्थान में सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अरबों के आक्रमण के पश्चात् हुआ। पहले उन्होंने उत्तरी सिन्ध में हाकड़ा नदी के किनारे मारोट, तत्पश्चात् पश्चिमी राजस्थान में लुद्रेवा व जैसलमेर में अपना राज्य स्थापित किया। सीमान्त क्षेत्र के 'मलिक' व 'तेगिन' थार रेगिस्तान में 'राव'–'राय' –'रावत'–'रावल' बन गये (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 31–35)।

इतनी महत्वपूर्ण जानकारी देने वाली जैसलमेर री ख्यात किस काल की रचना है, निश्चित तौर पर कहना कठिन है। लेकिन यह स्पष्ट है कि इस ख्यात का पुनर्लेखन कई बार हुआ है तथा प्रत्येक बार इसकी नयी प्रतियाँ तैयार करते समय लेखक के स्तर पर भी संशोधन कर दिये गये हैं। हमें जो प्रति प्राप्त होती है वह राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर द्वारा 1981 में प्रकाशित की गयी है। संस्थान के तत्कालीन निदेशक व प्रकाशित प्रति के सम्पादक डॉ0 नारायणसिंह भाटी ने ख्यात को किसी व्यक्ति से बड़ी कठिनाई के बाद प्राप्त किया था। भाटी ने इसे संस्थान की पत्रिका परम्परा के एक विशेष अंक के रूप में प्रकाशित किया। ख्यात के अन्तिम पृष्ठ पर

लिखित पद्यांश में आये मेहता अजीत के नाम के आधार पर डॉ0 भाटी ने अनुमान लगाया है कि इस रचना में आयी विभिन्न सूचनाओं का संकलन संभवतः मेहता अजीत ने संवत् 1921 / 1864 ई0 में करवाया। मेहता अजीत राजदरबार में एक उच्च प्रशासनिक अधिकारी थे। डॉ0 भाटी यह भी मानते हैं कि अजीत ने इस ख्यात की संकलित प्रति मेहता नथमल को प्रदान की थी और नथमल ने इसका भरपूर प्रयोग अपनी रचना तवारीख जैसलमेर में किया है, जिसका प्रथम प्रकाशन 1891 ई0 में हुआ (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 13, 14, 87; मेहता नथमल 1999, भूमिका)। तवारीख जैसलमेर में भाटी शासकों के पूर्वजों की अफ़गानिस्तान व मध्य एशिया से जुड़ी घटनाओं तथा उनके परिवार के कुछ सदस्यों का इस्लाम में दीक्षित होने का उल्लेख संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट दिया है, जिससे इंगित होता है कि तवारीख में जैसलमेर का प्राचीन इतिहास लिखते समय अन्य सूचनाओं का सहारा लिया गया है अथवा अजीत मेहता की ख्यात की प्राचीन प्रति उस अवधि के बारे में अधिक सूचनाएं प्रदान करती थी जिसे बाद में कांट छांट करके और संक्षिप्त बना दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसलमेर री ख्यात अजीत मेहता के प्रयासों से पूर्व अपने अस्तित्व में थी। तवारीख में उल्लेख किया गया है कि जेम्स टॉड को भी एक प्रति भेजी गयी थी जो वापिस नहीं आयी। अफवाह है कि वह बीकानेर पहुँच गयी थी (मेहता नथमल 1999, पृ0 7)। 17वीं शताब्दी में मुहता नैणसी ने अपनी ख्यात लिखते समय इसका प्रयोग किया था और इसमें दी गयी वंशावली के आधार पर उसने भाटियों की विभिन्न खांपों की वंशावली बनायी थी। नैणसी ने जब अपनी ख्यात लिखी उस समय मुगल सत्ता अपने पूर्ण वैभव पर थी और उसने उस समय मुगलों की नस्ल पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि वे (वस्तुतः) चकता या चगता (चगताई) भाटी हैं (साकरिया बदरी प्रसाद, 1984, भाग 3, पृ0 37)। यह उद्धहरण उसने निश्चित तौर पर जैसलमेर री ख्यात या उस जैसी रचना से लिया होगा जिसमें भाटियों या जादमों की पुरानी वंशावली दी गयी है। जैसलमेर री ख्यात व तवारीख में चगता को एक व्यक्ति बतलाया गया है जो बुखारा (मध्य एशिया अर्थात चगताई उलुस) में बस गया था। संभवतः भाटी राज–परिवार का यह राजकुमार अपने वैवाहिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप चगताई उलुस में देशान्तर गमन कर गया था और ख्यात के अनुसार वहाँ वह तुर्क बन गया था (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 31; मेहता नथमल 1999, पृ0 13)। चगताई प्रदेश में बसकर चगता कहलाना वैसा ही है जैसे अफ़गानिस्तान के घोर क्षेत्र में बसने वाले घौरी या गौरी

कहलाने लगे। नैणसी ने 1004 ई0 के प्रसिद्ध भटनेर युद्ध का विवरण दिया है जो राजस्थान के अन्य स्थानीय स्त्रोतों में उपलब्ध नहीं होता। इस युद्ध में भाटी गजनी के तुर्कों से एक तीव्र संघर्ष के पश्चात् पराजित हुए थे। तत्पश्चात् बहुत से भाटी मुसलमान बन गये थे तथा साथ ही अनेक दूसरी जातियों में समा गये थे (साकरिया बदरी प्रसाद, 1984, भाग पृ0 2, 17, भाग 3, पृ0 221)। अर्थात अरब व तुर्क आक्रमण के काल में भाटियों का धर्म व जाति परिवर्तन दोनों हुआ। नैणसी ने भटनेर युद्ध का विवरण ***जैसलमेर री ख्यात*** या उस जैसी किसी रचना से लिया होगा। वैसे नैणसी ने अपने विवरण के लिये जो संदर्भ लिये हैं उनका उल्लेख किया है। उसने जैसलमेर के इतिहास को जानने के लिये मुहता लखै तथा चारण रतनै व गोकुल का नाम दिया है बल्कि वह यह श्रेय भी देता है कि यह इतिहास उन्होंने ही लिखवाया (साकरिया बदरी प्रसाद, 1984, भाग 2, पृ0 6, 9)। इससे यह प्रतीत होता है कि जैसलमेर में मुहता या मेहता परिवार प्रदेश व राजवंश के इतिहास को लिखने में पीढ़ी दर पीढ़ी रुचि ले रहा था और मेहता अजीत उसी परिवार से सम्बन्धित था। जेम्स टॉड, जिसने जैसलमेर का वृतान्त जानने के लिये 18वीं शताब्दी के अन्त तथा 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ के दशकों में उपलब्ध विभिन्न स्त्रोतों का आश्रय लिया, ने मेहता व चारण परिवारों की ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया था। तवारीख जैसलमेर में उल्लेख है कि टॉड साहब को ख्यात की प्रति भेजी गयी थी। टॉड ने भाटियों या जादमों की अफ़गानिस्तान व मध्य एशिया की गतिविधियों का सबसे अधिक स्पष्ट विवरण दिया है यद्यपि उसके द्वारा दिये गये तिथि अनुक्रम में संशोधन की आवश्यकता है। उसका राजपूतों की उत्पत्ति शक–पार्थियन–कुषाण व हूणों से हुई है, का मत भाटियों के इतिहास की इस पृष्ठभूमि पर अधिक टिका हुआ है। वह भाटियों को शक परिवार से मानता है जिसे अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों ने स्वीकार नहीं किया है (शर्मा गोपीनाथ, 1973, पृ0 31–33, 99, 100)। राजस्थान के आधुनिक इतिहासकारों ने भाटियों के अफ़गानिस्तान व मध्य एशिया के जुड़ाव को भी नहीं माना है (आसोपा जयनारायण 1976, पृ0 148–50)।

राजस्थान में ख्यात लेखन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जहाँगीर या शाहजहाँ के शासन से पूर्व ख्यातशैली मुख्यतः वंशावलियों के विवरण पर आधारित थी। उस विवरण में कहीं–कहीं किसी व्यक्ति के साहसिक कारनामों अथवा किसी प्रमुख घटना अथवा महत्वपूर्ण शासक से जुड़ाव को लेकर एक दो शब्द अथवा एक–दो पंक्ति जोड़ दी जाती है।

उदाहरणार्थ भाटियों की वह शाखा जिसने दक्षिणी पंजाब के अबोहर में शासन किया, की संक्षिप्त वंशावली के साथ पिरोसाह अर्थात फ़िरोजशाह (तुगलुक) का नाम लिख दिया है। फ़िरोजशाह की माँ अबोहरिया भाटी राजकुमारी थी (साकरिया बदरी प्रसाद, 1984, भाग 2, पृ0 1, 10)। अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर जहाँ राजस्थानी साहित्य का सम्मानजनक संग्रह है, में अकबर के काल तक राजघरानों की जो ऐतिहासिक सामग्री मिलती है उसमें वंशावलियां व उसके साथ बहुत संक्षिप्त टिप्पणियों की प्रधानता है (देवड़ा घनश्यामलाल, 2010 पृ0 138–40)। संभवतः पूर्व मुगलकाल में यही लेखन शैली विद्यमान रही हो। वैसे उस समय किसी ऐतिहासिक घटना का विवरण पद्य शैली की रचनाओं में अधिक मिलता है। जैसा लिखा जा चुका है शाहजहाँ के काल में ख्यातशैली का विकास हुआ जिसमें वंशावलियों के साथ घटनाओं का विवरण एक विस्तृत स्वरूप में आने लगा। ***नैणसी री ख्यात*** उसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसलमेर री ***ख्यात*** अपनो प्रारम्भिक काल में पुरानी वंशावली प्रधान शैली में ही रचित होती रही और समय के साथ उसमें नये राजाओं का इतिहास विवरणात्मक शैली के साथ जुड़ता रहा। यही कारण है कि ख्यात के प्रारम्भिक पृष्ठ मात्र वंशावलियों का उल्लेख करते हैं, तत्पश्चात् टिप्पणीयों का समावेश होता है और उसके अन्तिम चरण में घटनाओं के क्रमबद्ध व वांछनीय विवरण मिलने लगते हैं। 1864 ई0 में समाप्त होने वाली ***जैसलमेर री ख्यात*** की रचना को लिखने में कई पीढ़ियों का योगदान रहा है। इस रचना का आरम्भ निश्चित तौर पर पूर्व मध्यकाल में हो चुका था और संभवतः मेहता परिवार द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी इसमें नये–नये युगों को जोड़ने का कार्य अनवरत जारी रहा। इस प्रक्रिया में पुराने वृतान्तों में कुछ संशोधन भी कर दिये गये हैं। इस रचना की ऐतिहासिकता के दावे के पीछे एक सबल कारण यह भी है कि इसमें जातियों व कबीलों के नाम कालान्तर में उनके नये नाम नामकरण व नयी नस्लीय पहचान के पश्चात् भी समकालीन पहचान के साथ दिये गये हैं। अर्थात एक ही जाति के अलग–अलग नाम कालक्रम में आये विवरण के अनुसार आये हैं। इससे कुछ राजपूत जातियों की उत्पत्ति की समस्या को लेकर उठा विवाद एक दिशा में ले जाया जा सकता है। पूर्व मध्यकाल के घटनाक्रम में ख्यात में भटनेर (हनुमानगढ़) के भाटियों की विठड़ा (भटिण्डा) के वरहाओं के साथ एक घोर शत्रुता विद्यमान होने का विवरण है जिसका लाभ सुलतान महमूद गजनी ने दोनों को अधीन करके उठाया था। संभवतः नैणसी ने ***जैसलमेर री***

ख्यात का सहारा लेकर इस शत्रुता का वृतान्त दिया है अन्यथा हमें अन्य रचनाओं में वरहाओं के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। आइने अकबरी में वरहा पंजाब के किसान बतलाये गये हैं। लेकिन ***जैसलमेर री ख्यात*** से ही विदित होता है कि वे गुजरात व फिर राजस्थान में जाकर बसकर झाला राजपूत कहलाने लगे। पंजाब में संभवतः गिल जाट वरहा हैं। वस्तुतः वरहा काबुल पर शासन करने वाले तुर्कीशाही वरहा तेगिन के कबीले के वंशज हैं जिन्हें बाद में हिन्दूशाहियों ने सत्ता से हटा दिया था (देवड़ा, जी0 एस0 एल0, 2003, कांग्रेस)।

जैसलमेर री ख्यात व तवारीख में दिये गये वृतान्त से यह प्रमाणित होता है कि घोर के शंसबान, शलवान या शंसबानी पंजाब व गजनी के शासक जादम शालिवाहन जिसकी राजधानी स्यालकोट बतलायी जाती है, के वंशज हैं। शालिवाहन प्रसिद्ध गुप्त शासक समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन था। ख्यात में शालिवाहन की वीरता व उसके साम्राज्य निर्माण को लेकर कई दोहे लिखे हुए हैं। भारत पर हूणों के प्रथम आक्रमण के समय शालिवाहन गजनी खो बैठा। यद्यपि राजा व दुर्ग के रक्षकों ने उसे बचाने के लिये शाका (शाका–जौहर) तक किया था। उसके बाद जादम परिवार भागकर पंजाब आ गये तथा कुछ ने पड़ौस के पहाड़ी क्षेत्र (घोर!) में शरण ली। ख्यात में टिप्पणी है कि शालिवाहन के पश्चात् उसका पुत्र बालद या बालबन्ध हसार (पेशावर के समीप) में गद्दी पर बैठा। पूर्व में बालद के पास ही गजनी का किला रहा था। घोर पहाड़ी क्षेत्र में शरण लेने वालों में उसका पाँचवा पुत्र खेमकरण या खारनाक भी था, जिसने चौथी शताब्दी के मध्य वहाँ अपनी सुरक्षा में एक किला बनवाया। उसी के वंशजों में चकता या चगता था जो मुसलमान हो गया। खेमकरण के अधिकतर वंशज मुसलमान हैं तथा कुछ हिन्दू हैं। तवारीख में इससे अलग उल्लेख है कि गजनी में खुरासान के शासक (हूण) का सामना जादम नरेश गजसेन ने किया था और उसके पश्चात् उसके पुत्र शालिवाहन ने गजनी को पुनः हस्तगत करके अपने पुत्र बालबन्ध के सुपर्द कर दिया। जब बालबन्ध उत्तराधिकारी शासक बना तो उसने अपने पुत्र भोपत को गजनी प्रदान कर दी। तवारीख के अनुसार भोपत का उत्तराधिकारी चगता हुआ जिसके सात पुत्र थे उसमें बीजल (इज्ज़ल) सबसे छोटा था। चगता यवनों की सोहबत में मुसलमान हो गया और उसने बुखारा की शहज़ादी से निकाह कर लिया। उनके शाह मुहम्मद नाम का पुत्र हुआ जो हेरात का प्रसिद्ध सुल्तान बना। उधर, बालबन्ध के ज्येष्ठ पुत्र भाटी

जिसके नाम के पीछे आगे चलकर जादम भाटी कहलाने लगे, के प्रपौत्र भटनेर नरेश सतोराव ने हूणों के कमजोर पड़ जाने पर पुनः समस्त पंजाब व गजनी जीत लिया। ख्यात भी इस विवरण का समर्थन करती है (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 30–31; मेहता नथमल 1999, पृ0 11–13) । बल्कि ख्यात और तवारीख इस घटनाक्रम में एक महत्वपूर्ण कूटनीतिक दिशा की ओर भी इंगित करती है। भाटियों द्वारा पंजाब व गजनी पुनः प्राप्त करने में उन्हें प्रतिहारों (प्रशियन) का पूरा समर्थन मिला था। संभवतः यह उस महान सन्धि का विस्तार है जब मध्य एशिया में हूणों के विरुद्ध प्रशियन, तुर्क व स्थानीय शक्तियों ने एक संयुक्त मोर्चा खोल दिया था। यह घटना 563 से 567 ई0 के मध्य घटी थी। इस प्रकार सीमान्त क्षेत्र के भाटी ईरान व मध्य एशिया की राजनीति के अंग हो गये। सतोराव के पौत्र नरपत के पुत्र गज्जु व वज्जु के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ गया जिसमें ज्येष्ठ पुत्र गज्जु ने अपने शक्तिशाली छोटे भाई वज्जु को परास्त करने के लिये मध्य एशिया के पश्चिमी तुर्क खाकान् बल्ख़ के सुलतान से सहायता ली थी। अन्ततः तुर्क खाकान् ने दोनों भाइयों को संतुष्ट करते हुए उनके विशाल सीमान्त राज्य को उनके मध्य बांट दिया (भाटी नारायण सिंह, 1981, पृ0 32–34; मेहता नथमल 1999, पृ0 14–15)। चीनी यात्री हुएनसांग सीमान्त क्षेत्र के इन्हीं दो भाइयों से मिला था और उन्हें बल्ख के तुर्क सुलतान के पत्र दिये थे (वाटरस् थॉमस, 2004, पृ075, 123)। 652 ई0 के आसपास गजनी व जाबुलीस्तान पर प्रथम अरब आक्रमण के समय भाई गज्जु व वज्जु की सन्तानें सीमान्त क्षेत्र व पंजाब के विभिन्न भागों पर शासन कर रही थीं (भाटी नारायण सिंह, 1981,पृ0 34)। उनके मध्य एशिया के तुर्कों के साथ गहरे सम्बन्ध थे बल्कि वे मध्य एशिया की राजनीति के एक सक्रिय सदस्य बन गये थे। यद्यपि गज्जु व वज्जु के पारस्परिक झगड़ों ने उस क्षेत्र में भाटियों की शक्ति को गहरा नुकसान पहुँचाया लेकिन किसी भी आक्रमणकारी के लिये यह तय हो गया था कि मध्य एशिया व वर्तमान अफगानिस्तान के क्षेत्र में स्थायी सफलता पाने के लिये भाटियों को परास्त करना आवश्यक है।

अरबों के आक्रमण के बाद भाटी सीमान्त प्रदेशों व पंजाब में शासकीय वर्ग नहीं रहे। रैणसी (रतिपाल) व उसके वंशजो ने सीमान्त क्षेत्र व गजनी में अपनी सत्ता को पुनर्जीवित करने के अनेक प्रयास किये लेकिन संभाग में अरबों के बाद उभरती सीस्तान तथा बुखारा की सफरीद् एवं समानीद् शक्तियों के आगे वे विवश हो गये। लेकिन उन्होंने पड़ौस के घोर प्रदेश से

अपना विरोध जारी रखा। इस प्रकार राजस्थान प्रदेश की भांति घोर प्रदेश में भी भाटियों को शरण लेने के लिये मुख्य रूप से दो बार जाना पड़ा। तत्पश्चात् घोर, सिन्ध व राजस्थान में भाटियों की शक्ति का पतन सफरीद् एवं समानीद् शक्तियों के स्थान पर आयी मध्य एशिया में मुस्लिम तुर्क–शक्ति के उत्थान से हुआ। भाटी उत्तरी सिन्ध व राजस्थान के क्रमशः मारोट व भटनेर में अपनी शक्ति महमूद गजनवीं के आक्रमणों तक बचाये रखे अन्ततः 1004 ई0 में भाटिया या भटनेर के पतन के पश्चात् धीरे–धीरे वे जैसलमेर आकर सिमट गये। इस दृष्टि से महमूद गजनवी तथा भटनेर के विजयराय के मध्य हुआ भाटिया युद्ध, भारतीय इतिहास में तराइन के युद्ध से भी अधिक निर्णायक है (देवड़ा घनश्यामलाल, 2010, पृ0 90–91)। उधर, भाटियों की एक शाखा ने गजनी हाथ से निकल जाने के पश्चात् अफ़गानिस्तान के दुर्गम पहाड़ी घोर प्रदेश में भी अपना घर बना लिया। प्रतीत होता है कि भाटी या जादम पहले भी घोर प्रदेश की सघन पहाड़ियों में समय–समय पर शरण लेते रहे हैं। लेकिन बहुसंख्या में इनका आगमन हूणों व अरबों के आक्रमण के बाद ही हुआ। जिस प्रकार भारत के अनेक भागों में जादम बालबन्ध के पुत्र भाटी के नाम पर 'भाटी' तथा गुजरात में 'जाडेजा' तथा सिन्ध में 'सामा' कहलाने लगे उसी प्रकार घोर में ये बालबन्ध के पिता शालवाहन के नाम पर 'शंसबानी व फिर चगताई कहलाने लगे। कुछ जादम या भाटी ही बने रहे जैसा कि गजनी सुलतान मसूद प्रथम के घोर पर आक्रमण के समय आये स्थानीय सरदारों के नाम से विदित होता है। प्रतीत होता है कि हूणों से पराजय के बाद घोर में आये जादमों ने अपने बाद आये अरबों से पराजित जादमों की भीड़ को क्षेत्रीय प्रतिद्वन्द्विता के रूप में लिया। पूर्व में आये जादम स्वयं को शिस के वंशज शिसानी कहते थे। बाद में आये जादम शंसबानी कहलाये। अन्ततः शंसबानी खलीफा हारुन रशीद के आशीर्वाद से घोर क्षेत्र के स्वामी बन गये और एक समझौते के अनुसार शिसानियों को सेना का सिपहसालार बना दिया गया। साधारणतया यह समझा जाता है शिसानी और शंसबानी दो अलग–अलग प्रजातियों के थे। दोनों जुहाक या जादम परिवार की अलग–अलग शाखाओं में से थे। मध्य एशिया के इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं जब एक ही कबीले या प्रजाति के दो समूहों के मध्य या तो परस्पर समझ अथवा किसी तीसरी बड़ी क्षेत्रीय शक्ति के हस्तक्षेप से यह निर्णय हो जाता था कि एक समूह से शासक बनेगा तो दूसरे समूह से प्रमुख सेनापति। लेकिन यह समझौता एक ही परिवार या प्रजाति के मध्य होता था।

संभवतः यह परम्परा मध्य एशिया के सीमान्त क्षेत्र के कबीलों व तुर्कों में मान्य थी। बाद में इसे मंगोलों ने भी अपना लिया। अगर अबुल फज़ल की माने तो भारत के महान मुग़ल इस प्रकार के समझौते में बने एक सिपहसालार की सन्तान हैं (एच0 बेवरिज, 1989, भाग प्रथम, पृ0 185, 187–88, 192)।

शंसबानियों व भाटियों की प्राचीन वंशावलियों पर टिप्पणी करना कठिन है क्योंकि समकालीन साक्ष्यों के अभाव में उनसे कुछ भी निर्धारित नहीं किया जा सकता। लेकिन चौथी शताब्दी से कुछ तानाबाना बुना जा सकता है तथा मध्यकाल से उनके समर्थन में अनेक साक्ष्य जुटाये जा सकते हैं। जैसलमेर री ***ख्यात*** मुख्यतः जैसलमेर के भाटी राजघराने की वंशावली का लेखा–जोखा है। उसमें जादमों व भाटियों की दूसरी शाखाओं का कुछ अति महत्वपूर्ण होने पर ही संदर्भ दिया गया है। ऐसे में बहुत से परिवारों की वंशावली दी ही नहीं गयी है अथवा बहुत ही संक्षिप्त व चयनित। तवारीख़ में भी यही चरित्र व व्यवहार है। लेकिन फिर भी तवारीख़ में ख्यात से तुलनात्मक रूप से अधिक विवरण है। संभवतः ***ख्यात*** में समय के साथ कुछ अंश सम्पादित कर दिये गये हो। ***ख्यात*** में गजनी व घोर प्रदेश को लेकर मात्र बालबन्ध, उसके पुत्र खेमकरण (खारनाक) व उसके वंश में हुए चकता का उल्लेख है जो मुसलमान हो गया था वहीं तवारीख में उल्लेख है कि बालबन्ध के बाद उसका पुत्र भोपत गजनी में आया और उसका पुत्र चिगता या चकता हुआ। दोनों सूचियाँ अधूरी व कालक्रम के अनुसार नहीं है। इस कारण इस पर कोई विस्तृत अध्ययन नहीं हो सका। सूचियों में बालबन्ध के बाद नामों में अन्तर आने का एक कारण यह भी हो सकता है कि जादमों की घोर प्रदेश में आने की प्रक्रिया एक से अधिक बार हुई है तथा प्रत्येक बार एक नया नेतृत्व उभरा है। उदाहरणार्थ, हूणों से पराजित होकर जादमों का समूह बालबन्ध के पुत्र खेमकरण (खारनाक) के नेतृत्व में आया था वहीं अरबों की सफलता से प्रभावित होकर भाटियों का एक समूह भोपत के नेतृत्व मे आया। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण उल्लेख यह है कि ख्यात में बालबन्ध के पुत्र भोपत का कोई नाम नहीं है। वहीं तवारीख में खेमकरण का नाम नहीं है। उधर, शंसबानियों का जो प्रारम्भिक इतिहास मिलता है उसमें भी अमीर पौलाद जिन्होंने खुरासान में प्रारम्भिक खलीफ़ाओं के शासन का विरोध किया था, के बाद एक लम्बे समय तक उसके किसी उत्तराधिकारी का नाम नहीं मिलता है। फिर अमीर बनजी या बन्दजी का नाम उभरता है जो खलीफ़ा हारुन रशीद के दरबार में गये थे। अमीर बनजी का पुत्र या पौत्र अमीर सूरी (शूरवीर) था जिसने शंसबानियों की

शक्ति को गठित किया तथा उसने प्रथम बार घोर प्रदेश के बाहर आक्रमण किये। उसने समानी व सफदवीं दोनों शक्तियों के आक्रमण से घोर प्रदेश को सुरक्षित रखा। संभवतः ***ख्यात*** व तवारीख का भोपत या भूपति अमीर सूरी ही है। राजस्थानी स्त्रोतों में भोपत का पुत्र चगता या चकता को बतलाया है जो मुल्क को पुनः प्राप्त करने के लिये यवन बन गया था और उसके सात पुत्र थे। उसी ने बुखारा के बादशाह की शहज़ादी से विवाह किया था और तुर्क हो गया था। उस विवाह से शाहमंद या शाह मुहम्मद नाम का पुत्र हुआ जो फिर अपने नाना का उत्तराधिकारी होकर बुखारा का बादशाह बना। अगर इस कथन का शंसबानियों व गजनवी के इतिहास की सूचनाओं से तुलनात्मक अध्ययन करें तो स्थिति कुछ स्पष्ट होती है। यद्यपि मि़नहाज ने जो अमीर सूरी के पश्चात् शंसबानियों की वंशावली दी है उसमें अनेक गलतियाँ हैं जिन्हें गजनवी काल के इतिहासकारों द्वारा दिये गये विवरण से सहजता से सुधारा जा सकता है। संक्षेप में, अमीर सूरी के पौत्र शिस जिसे गजनी के कई इतिहासकारों ने हिन्दू कहा है, महमूद गजनी की कैद से भागकर हिन्द आ गया था। उसके पुत्र साम ने इस्लाम स्वीकार कर लिया और अपने राज्य को गजनी के सुलतान के चंगुल से छुड़ाने का यत्न करने लगा परन्तु असफल रहा। संभवतः भाटी इतिहासकारों ने इसी साम को चगता कहा है। साम के पुत्र हुसैन ने दूसरी योजना बनाई और वह गजनी के सुलतान इब्राहिम का विश्वास जीतने में सफल रहा। अन्ततः इब्राहिम के पुत्र सुलतान मसूद द्वितीय ने 1099 ई0 में हुसैन को मलिक इज्जलअलद्दीन की उपाधि देकर घोर का प्रान्त सौंप दिया। भाटी लेखकों ने इसे चगता का पुत्र बीजल बतलाया है। उन्होंने गलती से चगता के सात पुत्र बतलाये हैं जबकि इज्ज़लअलद्दीन के सात पुत्र थे। भाटी साहित्य में उन पुत्रों के नाम देवसी, भैरों, खेमकरण, नाहर, जैपाल, धर्मसी और बीजल बताएं हैं। मिनहाज ने उनके नाम क्रमशः फख़रअलद्दीन, बहाअलद्दीन, कुतुबअलद्दीन, सैफअलद्दीन, अलाअलद्दीन, सीहाबअलद्दीन व शुजाअलद्दीन बताएं हैं। वस्तुतः शहजादों के ये नाम नहीं होकर उनकी यह उपाधियाँ हैं। उदाहणार्थ, सीहाबअलद्दीन का नाम खारनाक है जो खेमकरण का स्थानीय उच्चारण है। भाटी स्त्रोतों में चगता का आठवाँ पुत्र शाहमंद को बतलाया है जो बुखारा की राजकुमारी से उत्पन्न हुआ। जबकि यह विवाह इज्जल के पुत्र सीहाबअलद्दीन खारनाक के दूसरे पुत्र सैफअलद्दीन से हुआ था और यह विवाह बुखारा के बादशाह के परिवार में नहीं होकर गर्जिस्तान के मागबर्नी परिवार में हुआ था। सैफअलद्दीन का पुत्र

शम्सअलद्दीन मुहम्मद अपने नाना मागबर्नी परिवार का उत्तराधिकारी बना और मंगोलों की सहायता से वह हेरात का सुलतान बन गया। वहाँ उसने कुर्त राजवंश की नींव डाली और स्वयं को सुल्तान संजर का वंशज कहा। उस समय तक शंसबानियों की खुरासान व गजनी में सत्ता समाप्त हो चुकी थी व उनका स्थान मंगोलों व तुर्को ने ले लिया था (मिनहाज (रेवट्री), 1970, पृ0 418–19; निजामी, 1996, पृ0 178–79)।

भाटी स्त्रोत यह भी जानकारी देते हैं कि बीजल के लड़के गोरी ने बल्ख से चालीस कोस दूर (पश्चिम दिशा की ओर) गोर नाम का शहर बसाया। उसकी कौम गोरी के नाम से चर्चित हुई। 'दिल्ली में गोरी ने उँचे स्तर की बादशाहत करी'। शंसबानियों के इतिहास से जानकारी मिलती है कि इज्जल के उत्तराधिकरी सैफअलद्दीन ने घोर प्रदेश में हरीरुद नदी के दक्षिणी किनारे नयी राजधानी फ़िरोजकोह की नींव डाली थी जिसे वह पूरा नहीं कर सका। उसके भाई बहअलद्दीन जो उसकी असामयिक मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर बैठा, ने उस कार्य को पूरा किया। बहअलद्दीन के दोनों पुत्र सुलतान गयासुद्दीन व सुलतान मुइजुद्दीन गौरी के मध्य एशिया व भारत आक्रमणों का इतिहास सर्वविदित है। मुइजुद्दीन भारत में सुलतान गौरी के नाम से चर्चित हुआ तथा उसके परिवार वाले भी गौरी कहलाये। दूसरे शब्दों में जैसलमेर के रिकार्डस् यह दावा करते हैं कि मोहम्मद मुइजुद्दीन गौरी मूलतः अपने परिवार से जादम या भाटी था (नथमल, 1999, पृ0 13)। इस प्रकार जादमों या भाटियों ने मध्यकाल में मध्य एशिया व अफ़गानिस्तान में दो प्रसिद्ध राजवंशों–शंसबानी व कुर्त की नींव डाली। कुर्त तो आधुनिक अफ़गानिस्तान के प्रथम निर्माता माने जाते हैं। आज भी अफ़गानिस्तान में शंसबानियों के अनेक कबीले अलग–अलग नामों से निवास करते हैं। विशाल हजारा समुदाय भी जादमों से जुड़ा हो सकता है क्योंकि हजारा व सीसानियों के मध्य सामाजिक व्यवहार था।

संदर्भ सूची

- अल्लामी अबुल फजल 1989, *आइन–ए–अकबरी*, भाग 2 (फारसी से अंग्रेजी में अनुवाद, एच0 ब्लॉकमेंन, एच0 एस0 जैरेट व जदुनाथ सरकार), दिल्ली, लॉ प्राइस पब्लिकेशन।
- आसोपा जयनारायण 1976, *दी ऑरिजिन ऑफ दी राजपूतस्*, दिल्ली, भारतीय पब्लिशिंग हाउस।
- एच0 बेवरिज (सं व अनु0) 1989, *दी अकबरनामा ऑफ अबुल फज़ल*, भाग 1, दिल्ली, लॉ प्राइस।
- कन्निंघम अलेक्जेण्डर 1871, *एनसियेण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया*, लन्दन, ट्यूबनेर एण्ड को।
- खानम आर0 2005, *एनसायक्लोपीडिया ऑफ मिडल ईस्ट एण्ड सेन्ट्रल एशिया*, ए–1, ***भाग 1,*** दिल्ली, ग्लोबल पब्लिकेशन।
- गाफुरॉव बी0 जी0 2005, *सेण्ट्रल एशिया–प्री हिस्ट्री टू प्री मॉर्डन टाइम्स्*, भाग 1, कोलकता, शिप्रा।
- जे0 मारक्वार्ट 1901, Eransahr nach der Geographie des Ps. Moses Xorenac'i, AGGW, N.F. III/2, बर्लिन।
- टॉड जेम्स 1920, *एन्नल्स् एण्ड एण्टीक्वीटीज् ऑफ राजस्थान*, (सम्पादक, विलियम क्रुक) लन्दन , ऑक्सफोर्ड। ***यूनिर्वीसिटी प्रेस***
- टेन्नर स्टेफन 2002 ***अफ़गानिस्तान***, न्यूयार्क, दी केपो प्रेस।
- देवड़ा जी0 एस0 एल0 2003, 'पोलिटिकल वाइल्डन्रन्नैस एण्ड सोशियल डिसमेम्बरमेण्ट, वरहा–ए फोरगोटन क्लान ऑफ नार्थवेस्ट इण्डिया', ***इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग, मैसूर***।
- देवड़ा जी0 एस0 एल0, 2007, ***'आइडेण्टीफिकेशन ऑफ भाटीया,'*** प्रकाशित, *प्रो0 के0 एस0 गुप्ता फेलिशिटेशन वॉल्यूम*, उदयपुर, प्रताप शोध संस्थान।
- देवड़ा जी0 एस0 एल0 2011, 'कुष्क–स्ट्रोंगहोल्ड ऑफ अफ़गानिस्तान एण्ड सेण्ट्रल एशिया ड्यूरिंग दी मंडिवल पीरियडश शोध प्रपत्र प्रस्तुत, *यूरोपीयन सोसायटी फॉर सेण्ट्रल एशियन स्टडीज्*, बाहरवाँ अधिवेशन, चर्चिल कॉलेज, युनिवर्सिटी ऑफ केम्ब्रिज, केम्ब्रिज, ब्रिटेन, 20–22 सितम्बर। (शीघ्र प्रकाशन)
- देवड़ा जी0 एस0 एल0 2012, *'हिन्दू कमांडरस् इन दि आर्मी ऑफ*

गजनाविडस्', इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग, मुंबई।

- देवड़ा जी0 एस0 एल0 2012, एनवायरमेण्टल क्राइसिस एण्ड सेशियल डिसमेम्बरमेण्ट इन नोर्थवेस्ट इण्डिया, ऑकेजनल पेपर, नई सीरिज 3, नई दिल्ली, नेहरु मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लायब्रेरी।
- देवड़ा घनश्यामलाल, 2010, *राजस्थान इतिहास के अभिज्ञान रूप*, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकॉदमी।
- नाजिम मुहम्म्द 1971, *'दि लाइफ एण्ड टाइम्स् ऑफ सुलतान महमूद ऑफ गजना'*, नई दिल्ली, मुंशीराम मनोहरलाल।
- निजामी के0 ऐ0 1996, 'दि घुरीडस्, प्रकाशित, ऐसीमॉव एम0 एस0 व बॉसवर्थ सी0 ई0 (सं0)', *हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन ऑफ सेन्ट्रल एशिया,* भाग चार, पेरिस, यूनेस्को।
- पांडे डी0 बी0 1973, *'दि शाहीज् ऑफ अफ़गानिस्तान एण्ड पंजाब'*, दिल्ली, ओरियण्टल।
- फ्राई आर0 एन0 (सं.) 1975, 148, *'दि केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ ईरान'*, भाग 4, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी।
- फ्राये आर0 एन0 एंव सायली ए0 एम0 1943, 144–45, 205–06, *तुर्कस् इन दि मिडल ईस्ट बिफोर दि सलजुक*, जे0 ए0 ओ0 एस0, LKIII
- बारथोल्ड वी0 वी0, 1962,. *फोर स्टडीज् ऑन दि हिस्ट्री ऑफ सेण्ट्रल एशिया*, भाग 1, (अ0 वी0 एवं टी0 मीनोरस्की), लीडन।
- बोसवर्थ, सी0 ई0 1963, 35–36, दि गजनाविडस्, एडिनबर्ग, यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बेकन एलिजाबेथ 1951, 'एन एनक्वारी इण्टू दि हिस्ट्री ऑफ हजारा मंगोल ऑफ अफ़गानिस्तान', *साउथवेस्ट जॉरनल ऑफ एन्थ्रोपोलोजी*, 7:3।
- भाटी नारायण सिंह (सं.) 1981, 32, *जैसलमेर री ख्यात, परम्परा,* भाग 57–58, जोधपुर चौपासनी।
- मिनहाजउद्दीन अबु उमर ए उस्मान 1970 (1881), *तबकाते नासीरी*, भाग 1, (फारसी से अंग्रेजी में अनुवाद, मेजर एच0 जी0 रेवर्टी), दिल्ली, मुंशीराम मनोहरलाल।
- मिर्जा कलिचबेग फ्रेदुनबर्ग (अनु0 व सं0), 1979, 55, 157 *दि चचनामाः दि एनसियेण्ट हिस्ट्री ऑफ सिन्ध*, दिल्ली, इदराहे अदाबियत।

- मेहता नथमल 1999 (1899), *तवारीख जैसलमेर, जोधपुर,* राजस्थानी ग्रन्थागार।
- याती सी0 ई0 1888, *नार्दन अफ़गानिस्तान,* एडिनबर्ग, ब्लैकवुड एण्ड सन्स्।
- वाटरस थॉमस 2004, *ऑन युवान च्वांग ट्रैवल्स् इन इण्डिया*, दिल्ली, लॉ प्राइस।
- शर्मा गोपीनाथ 1973, *राजस्थान का इतिहास,* आगरा, शिवलाल अग्रवाल।
- शर्मा गोपीनाथ 2008, *राजस्थान के इतिहास के स्रोत,* जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- स्ट्रैन्ज जी0 ले 1905, *दि लैण्ड ऑफ ईस्टर्न केलीफेट*, केम्ब्रिज,
- *साइकस् सर पर्सी,* 1940, 159–60, *ए हिस्ट्री ऑफ अफ़गानिस्तान,* भाग 1, लन्दन, मैकमिलन।
- सचाउ एडवर्ड सी (सं0) 1989, *अलबेरुनीज् इण्डिया*, दिल्ली, लॉ प्राइस।
- साकरिया बदरी प्रसाद , 1984, *मुहणोत नैणसी री ख्यात*, भाग 1–3, जोधपुर, राजस्थान प्राच्य प्रतिष्ठान।
- हबीब मोहम्मद एवं निजामी खलीक अहमद (सं0) 1992, भाग 5 अ 180–82, *दि क्रम्प्रेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, दी दिल्ली सल्तनत*, नई दिल्ली, पीप्लस ।
- होलदिच टी0 एच0 1881, *जियोग्राफिकल रिजल्टस् दि अफ़गान केम्पैन,* प्रासिडिंग ऑफ दि रॉयल ज्योग्राफिकल सोसायटी एण्ड मंथली रिर्काडस् ऑफ ज्योग्राफी, 3:2, लंदन।